RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-10
October-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

स्त्री आत्मकथा लेखन के प्रेरक तत्त्व

अनामिका कुमारी

शोध–छात्रा, हिन्दी–विभाग, बी० आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

स्त्री आत्मकथा लेखन के प्रेरक तत्त्व पुरूष आत्मकथा लेखन से भिन्न है। पुरूष द्वारा जो आत्मकथा लेखन हुआ उसे लिखने वाले वे थे जिन्होंने जीवन में उपलब्धियाँ पायी थीं। इसप्रकार आत्मकथा लेखन माध्यम से अपनी उपलब्धियों की गाथा और आत्म निरीक्षण उनका उद्देश्य था। स्त्री आत्मकथा की स्त्री वह है जो इतिहास द्वारा वंचित है। उसके यातना के इतिहास के वर्षों से दबाया गया है। अब वही दर्द अवसर पाकर शब्दों में फूट पड़ा है। उनकी आत्मकथा में साझेदारी की भावना होती है। हिन्दी की कतिपय स्त्री रचनाकारों की आत्मकथाओं के अनुशीलन के द्वारा हम उनकी आत्मकथा लेखन प्रेरक तत्वों की पड़ताल कर सकते हैं।

कथेतर गद्य विद्याओं में आत्मकथा एक ऐसी विद्या है जिसमें लेखक का पाठकों से सीधा सामना होता है। इसका उदय बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के साथ होता है। बीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में समाज सुधारकों, राष्ट्रनायकों तथा राजनीतिज्ञों द्वारा आत्मकथाएँ लिखी गयी। इनमें महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू आदि उल्लेखनीय हैं।

आत्मकथा लेखन की कुछ शर्तें होती है। सबसे पहले तो आत्मकथा एक सफल व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है। आम आदमी का जीवन वृत्त तो कथा बनकर रह जाती है। दूसरी बात कि लेखन के लिए व्यक्ति को अपने आप से तटस्थ दूरी बनानी पड़ती है। तभी आत्मकथा लेखन सम्भव हो पाता है।

आत्मकथा आधुनिक हिन्दी साहित्य की नूतन विद्या है। आत्मकथाकार जब आत्मकथा लिखता है तो अपने बीती हुई घटनाओं को बहुत ही सहजता से पाठकों के सामने पेश करता है। आत्मकथाकार अपने जीवन के घटनाओं के सभी पहलुओं को निर्भिक होकर पेश करता है। इसलिए आत्मकथा को आत्मचरित और आत्मकहानी भी कहा जाता है।

डॉ० बच्चन के अनुसार – आत्मकथा का अर्थ है – 'आत्म चित्रण' डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार – 'आत्मकथा, लेखक के अपने अतीत का समग्र वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाता है।

आत्मकथा लेखन में एक नया मोड़ आता है अस्मिता विमर्श के उभार के बाद। लम्बे समय तक आत्मकथा लेखन उपेक्षित पड़ा रहा। अस्मिता विमर्शों के बाद समाज के वंचित एवं उपेक्षित समुदाय की यातना कथा सामने आने लगी तो आत्मकथा लेखन एक बार महत्वपूर्ण हो उठा। पर्सनल इंज पॉलिटिकल की तर्ज पर वंचित समुदायों की जीवन कथा महत्वपूर्ण हो गई। यही कारण है कि चाहे दलित विमर्श हो या स्त्री विमर्श में आत्मकथाएँ बड़ी संख्या में सामने आईं। लम्बे समय तक कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' हिन्दी की पहली स्त्री आत्मकथा मानी गई। लेकिन हाल ही में कई ऐसी पुरानी रचनाएँ सामने आई। जिसे आत्मकथाओं की कोटि में रखा जा सकता है। जिसमें सरला देवी नामक एक युवती की आत्मकथा, स्फूर्णा देवी की रचना 'अबलाओं का इंसाफ' तथा 'सीमंतनी उपदेश' आदि कृतियाँ आती हैं। इसमें 'अबलाओं का इंसाफ', 'सीमंतनी उपदेश' आत्मपरक होते हुए भी पूरी तरह से आत्मकथा की कोटि में नहीं आती।

आत्मकथाओं की लेखन की शुरूआत आधुनिक काल की देन है। मध्य काल के सामंतनी समाज आत्मकथा लेखन की छूट नहीं देता। इस दृष्टि से देखे तो मीरा की कविताएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। मीरा हिन्दी की पहली ऐसी रचनाकार है जिन्होंने अपने बारे में इतना कुछ लिखा है। मीरा के पद उनकी आत्मकथा नहीं तो और क्या है ? स्त्री अस्मिता की पहली अनुगूंज मीरा की रचनाओं में ही सुनाई पड़ती है।

चंद्रभान सिंह यादव ने अपने लेख दलित आत्मकथाएँ दर्द के दस्तावेज जो हंस के अप्रैल 2011 अंक में छपा। इस लेख में उन्होंने आत्मकथा पर कुछ इस तरह टिप्पणी किया है – ''आत्मकथा में आत्मा का संबंध लेखक से है तो कथा का संबंध समय और समाज से।''[1]

रमणिका फाउंडेशन की अध्यक्ष और 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका की संपादक रमणिका गुप्ता एक स्वतंत्र लेखिका हैं। ये साहित्य के विभिन्न विधाओं में अपनी कदम चलाई हैं। इन्होंने अपनी लेखनी में दलित, आदिवासी और स्त्री को प्रमुखता दी। रमणिका गुप्ता आत्मकथा पर कुछ इस तरह विचार प्रकट की है – ''आत्मकथा को सीधे शब्दों में परिभाषित किय जाऐ तो 'कन्फेशन' ही कहा जा सकता है। कन्फेशन समाज को कुछ दे चाहे न दे उसकी गलतियों और उसकी संकीर्णताओं को आगे सुधारने की दिशा जरूर दे सकती है और स्वतंत्र और ईमानदार समाज के निर्माण में सहायक भी हो सकती है। किसी व्यक्ति की जिंदगी अथवा समाज को दिशा देने के लिए आत्मकथाएँ सामज को बदलने या संभालने का ज्यादा मौका दे सकती है। इसलिए जो लोग समाज की व्यवस्था के कारण अपना निर्णय खुद न ले सकने में जिंदगी से जुझते हैं और सफल या असफल होते हैं। यदि वे आत्मकथा लिखें तो अधिक सार्थक होगा। सीधे शब्दों में कहूँ तो जो जमात अथवा वर्ग पराधीन है, जैसे कि दलित, आदिवासी, स्त्री, बधुआ, कैदी अथवा गुलाम आदि अपनी आत्मकथा लिखते हैं तो वे व्यक्ति की कथा न होकर वह समाज की कथा बन जाती है इसके विपरीत यदि अभिजात्य वर्ग में से कोई व्यक्ति अपनी आत्म स्वीकृतियाँ लिखता है तो वे व्यक्ति परक होती है। वे उनकी

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

कमजोरियाँ या उसके ऐश्वर्य अथवा भोगविलास की कथाएँ होती है। हाँ अभिजात्य वर्ग के कतिपय ऐसे व्यक्ति जो महानता की हदें छू लेते हैं, अपनी आत्मस्वीकृतियाँ लिखें तो जरूर वे समाज के लिए प्रेरणादायी हो सकती है।''[2]

आत्मकथा व्यक्ति के भोगे हुये जीवन की वास्तविक कथा होता है। आत्मकथाकार अपनी आत्मकथा में बिना गुण–दोष को छिपाये पाठकों के सामने बहुत ही रोचकता के साथ अपनी बीती हुई घटनाओं को प्रस्तुत करता है। डॉ० चम्पा श्रीवास्तव ने आत्मकथा पर कुछ इस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है – ''आत्मकथा व्यक्ति का वह अन्तः साक्ष्य है जो उसकी सम्पूर्ण जीवन यात्रा का प्रमाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है। आत्मकथाकार अपने विगत जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को सच्चाई और ईमानदारी के साथ तटस्थ होकर अभिव्यक्त करता है।

अपने विषय में कुछ बताने की इच्छा मानव मात्र में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। इस शाश्वत और स्वाभाविक इच्छा को ही कार्य रूप में परिणत करने के लिए मानव आत्मकथा के सृजन हेतु अग्रसर होता है। हिन्दी साहित्य में इस विधा के अतिरिक्त कोई भी ऐसी विधा नहीं है जो प्रत्येक रूप से मानव के व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करने में समर्थ हो। इस दृष्टि से साहित्य की अन्य सभी विधाओं में सबसे अनुकूल एवं सहज विधा आत्मकथा ही प्रतीत होती है।''[3]

जीवनी और आत्मकथा दोनों जीवन के वास्तविक घटनाओं से संबंधित होती है। दोनों मे अन्तर सिर्फ इतना है कि जीवनी दूसरे द्वारा लिखी जाती है और आत्मकथा लेखक स्वंय लिखता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार – ''जीवनी – आत्मकथा ऐसे गद्य रूप हैं जो क्रमशः सूचनात्मक से सर्जनात्मक धरातल पर पहुचते हैं। पारस्परिक मानवीय सम्पर्क के बढ़ने तथा आधुनिक मनोविलेषण के प्रचार–प्रसार जैसे कई कारणों से सामान्य मनुष्य चरित्र और उसके क्रियाकलापों में मनुष्य का कौतुहल पिछले दिनों बढ़ता गया है। जीवनी आत्मकथा का आकर्षण उसी अनुपात में फैला है और यह आकर्षक अब महनीय के चरित्र तक सीमित नहीं रह गया जैसे कि पहले बहुत समय तक था। अब अनाम साधारण मनुष्यों के जीवन में भी लेखक पाठक की जिज्ञासा और रूचि बढ़ी है।''[4]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा 'कस्तुरी कुंडल बसै' में आत्मकथा को उपन्यास के समतुल्य माना है। कथन द्रष्टव्य है – ''हर आत्मकथा एक उपन्यास है और हर उपन्यास एक आत्मकथा। दोनों के बीच सामान्य सूत्र 'फिक्सन' है। इसी का सहारा लेकर दोनों अपने को अपने आप की कैद से निकलकर दूसरे के रूप में सामने खड़ा कर लेते हैं। यानी दोनों ही कहीं न कहीं सर्जनात्मक कथा गढ़न्त है। इधर उपन्यास की निर्वैयक्तिकता और आत्मकथा की वैयक्तिकता मिलकर उपन्यासों का नया शिल्प रच रही हैं। आत्मकथाएँ व्यक्ति की स्फुटित चेतना का जायजा होती है, जबकि उपन्यास पाए हुए विचार की या 'सत्य के प्रयोग' की सूची है और उपन्यास विचार का विस्तार और अन्वेषण।''[5]

'स्त्री–चेतना के प्रस्थान बिंदु' की लेखिका डॉ० सुनीता गुप्ता आत्मकथा की सर्जनात्मक आवश्यकता हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं से अलग मानती हैं। कथन द्रष्टव्य है –''आत्मकथा रचना की सर्जनात्मकता आवश्यकता अन्य विद्याओं से भिन्न है। आत्मकथा लेखन का उद्देश्य महज आत्माभिव्यक्ति नहीं होता। इसकी सामाजिक, व्यक्तिगत, ऐतिहासिक वजहें भी होती है। आत्मकथा लिखने के पीछे एक उद्देश्य तो आत्म–निरीक्षण भी होता है, अपने व्यक्तित्व निर्माण या अपने जीवन की पड़ताल। निश्चय ही व्यक्ति या जीवन का निर्माण ऐतिहासिक व समसामयिक परिस्थितियों की अर्न्तक्रिया से होता है। इसके माध्यम से कई बार अपने संघर्ष को दूसरों के सामने रखने का प्रयास भी एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है।

आत्मकथा एक सिंहावलोकन भी होता है अपने जीवन का – वह जीवन जिसके निर्माण में कई प्रकार की परिस्थितियाँ गतिशील रही है। निश्चय ही एक साधारण व्यक्ति का सिंहावलोकन कोई मायने नहीं रखता है। एक निश्चित मुकाम तक पहुँचकर ही व्यक्ति अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है। आत्मकथा में अपने जीवन भर के अनुभवों का अवलोकन करता हुआ वह उन विकल्प बिन्दुओं या मोड़ों की खोज करता है जो कभी विकल्प बनकर और कभी नियति बनकर उपस्थित होते हैं। व्यक्तित्व–निर्माण निश्चय ही इकहरी प्रक्रिया नहीं होती। कई प्रकार के दबावों–संघर्षों के बीच एक व्यक्ति का निर्माण होता है। ऐसे में एक विराट व्यक्तित्व अपने समय के इतिहास का दस्तावेज बन जाता है। इसलिए उसकी आत्मकथा में एक युग अपनी समस्त ध्वनि प्रतिध्वनि के साथ मुखरित हो उठता है।''[6]

हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आत्मकथा को व्यक्ति की जीवन यात्रा मानती है। कथन द्रष्टव्य है – ''आत्मकथा अर्थात किसी व्यक्ति की जीवन यात्रा। विश्व के सभी मनुष्य छोटा बड़ा जितना भी जीवन जीते हैं वहीं उनकी जीवन यात्रा होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। प्राचीन मानव हो या आधुनिक युग का इंसान, सभी किसी न किसी समाज में रहकर पले और बढ़े है। उस युग की भौगोलिक स्थिति के अनुसार उसकी जीवन यात्रा रही है। मानव समाज के बुद्धिमान और सहृदय इंसानों ने सदियों के मानव जीवन को देख–सुनकर पहला निष्कर्ष यह निकाला कि जब तक संसार के सभी इंसानों को भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य और मकान के साधन उपलब्ध नहीं हो जाते तब तक विश्व–श्शान्ति की कल्पना एक मरीचिका है।''[7]

'अवलाओं का इन्साफ' स्फुरना देवी रचित आधुनिक हिन्दी की प्रथम स्त्री आत्मकथा है। यह अत्याचार से त्रस्त स्त्रियों की आत्मकथा है। नैया के अनुसार – ''अवलाओं का इन्साफ' को इसकी लेखिका स्फुरना ने आत्मकथा कहा है। परन्तु इसकी पठनीयता और शैली इसे आत्मकथात्मक उपन्यास की तरह पढ़वाती है। इसलिए मैं इसे आत्मकथात्मक उपन्यास ही कहूँगी। कल्पना यथार्थ रोचकता का मिश्रण लिये यह कृति आत्मकथा और उपन्यास दोनों का आस्वाद देती हे। लेखिका स्वंय अपनी प्रस्तावना में लिखती है कि 'मैनें थोड़े से नामों की कल्पना करके उनके वर्णनों में अनेक अत्याचार पीड़ित व्यक्तियों की आत्मकथाओं का संक्षेप में समावेश करते हुए

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

समाज की दुर्दशा का दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। इस तरह की आत्मकथा सच्ची हों तो भी उनके सम्बन्ध में व्यक्तियों के सच्चे नाम लिखना अनेक कारणों से ठीक नहीं। अतः इस लेख में नाम यद्यपि बदले गये हैं और कहीं–कहीं कल्पित भी किए गए परन्तु अत्याचार कल्पित नहीं है। प्रस्तावना में ही लेखिका आगे लिखती हैं, पाठक महाशयों ! यह कोई धर्म की गाथा नहीं है, न कोई अपने पूर्वजों का पवित्र इतिहास, न यह कोई मनोरंजक उपन्यास या नाटक है और न यह श्रृंगार रस, नायिका भेद तथा उपमालंकार से परिपूर्ण कोई काव्य ही है। यह न कोई राजनीतिक पुस्तक है और न कोई वैज्ञानिक निबन्ध, न इसमें भाषा की शुद्धता एवं सुन्दरता पर ही कोई खयाल रखा गया है और न कोई कविता ही कही गई है, बल्कि यह है अत्याचार से आतुर महिलाओं की आत्मकथा और है उनकी आह भरी अपील।''[8]

हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में पुरूषों के साथ–साथ महिला लेखिकाओं ने जिस तरह कलम चलाई है। उसी तरह आत्मकथा लिखकर महिला लेखिकाओं ने इस विधा को समृद्ध किया है। यह सत्य है कि लेखकों के अपेक्षा लेखिकाओं ने इस विधा में कलम कम चलाई है। आत्मकथा में जीवन का वास्तविक ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है। जिसके कारण महिला लेखिकाओं की भागीदारी कम मिलती है। बहुत कम लेखिकाओं ने अपने जीवन के कटु सत्य को साहस के साथ प्रस्तुत किया है।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पहली बार मीरा की रचनाओं में स्त्री चेतना का स्पष्ट सुनाई पड़ती है। प्रो० मैनेजर पाण्डेय के अनुसार – ''मीरा की कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। उस युग में एक स्त्री के लिए ऐसा संघर्ष अत्यंत कठिन था। लेकिन मीरा ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया।''[9]

स्त्री चेतना का बीजारोपण 19वीं शताब्दी में हो चुका था लेकिन बीसवीं सदी में यह विमर्श अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचा। नारी चेतना के संदर्भ में मृदुला गर्ग का कथन द्रष्टव्य है – ''चेतना का सम्बन्ध अपने प्रति सजग होना, विभिन्न परिपेक्ष्यों में रखकर अपनी स्थिति का मूल्यांकन करना है। चेतना के सहारे व्यक्ति निजी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर इतिहास, संस्कृति और मानवीय संबंधों को पुनः विश्लेषित करता है। इस प्रकार जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी चेतना है।''[10]

स्त्री चेतना हिन्दी साहित्य के विभिन्न विधाओं में देखने को मिलता है लेकिन इसका स्पष्ट और यथार्थपरक रूप स्त्री द्वारा रचित आत्मकथा में देखने को मिलता है। सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, परम्पराओं को तोड़ते हुए महिला आत्मकथाकारों ने कलम थाम ली और अपने चुप्पी को तोड़ी। स्त्री रचनाकारों ने आत्मकथा लिखकर पुरूषों की मानसिकता और उनके आंतरिक सच्चाई पर से पर्दा हटाने की साहस की। जिन महिला लेखिकाओं ने अपने शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई और आत्मकथा लिखने की साहस जुटाई उनमें प्रमुख महिला लेखिकाओं की आत्मकथा इस प्रकार है – 'बूँद बावड़ी', – पदमा सचदेव, 'स्वतंत्रता और प्रेम की राह', – सिमोन द बोबुआर, 'कस्तुरी कुण्डल बसै' – मैत्रेयी पुष्पा, 'हादसे' – रमणिका गुप्ता, 'एक कहानी यह भी' – मन्नू भंडारी, 'अन्या से अनन्या' – डॉ० प्रभा खेतान, 'और... और... औरत', 'लगता नहीं है दिल मेरा' – कृष्णा अग्निहोत्री, पिंजरे की मैना – चन्द्रकिरण सौरेनरेक्सा आदि।

मृदुला गर्ग ने आत्मकथा के अपेक्षा साहित्यिक रचनाओं को ज्यादा महत्वपूर्ण बताया है। कथन द्रष्टव्य है– ''मुझे लगता है लेखक सबसे ज्यादा सच्चा और ईमानदार तब होता है, जब सृजानात्मक लेखन कर रहा होता है और सबसे कम ईमानदार तब, जब आत्मकथा में सायास 'सच' लिख रहा होता है। इसीलिए सामाजिक अनुशीलन के लिए भी लेखकों या लेखिकाओं की आत्मकथाओं के मुकाबले उनकी साहित्यिक कृतियाँ ज्यादा महत्वपूर्ण होती हैं। आजकल बार –बार यह सवाल क्यों उठाया जा रहा है कि लेखिकाओं को आत्मकथा लिखनी चाहिए या कि लेखिकाएँ आत्मकथा क्यों नहीं लिखती ? उसके मूल में कही यह भावना तो काम नहीं कर रही कि आज के बहुआयामी सच को खींच –तानकर एक दायरे मे फिट कर दिया जाए, जिससे समाजशास्त्रियों और नारी उत्पीड़न के शोधार्थियों का काम आसान हो न सत्य की खोज इतनी आसान नहीं होती और न बनाई जानी चाहिए। सच बहुआयमी ही नहीं सतत गतिशील और परिवर्तनशील होता है और बराबर पुनविश्लेषण की मॉग करता है। उसके इस स्वरुप को समझने के लिए अनेक लेखकों के निजी नजरिए से परखे ओर लंबे आंशिक सच को साथ रखकर देखना शायद सबसे ज्यादा कारगर होता है।''[11]

सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में अपनी माँ के प्रगतिशील दृष्टिकोण पर कुछ इस प्रकार विचार प्रकट किया है– ''मेरी पढ़ाई के लिए माँ ने मुझे विशेष सहयोग दिया। उन्होंने मनोयोग से चाहा मैं विशेष योग्यता प्राप्त करुँ ताकि अच्छी नोकरी कर सकूँ। 1960 में माँ का इस तरह सोचना उनका प्रगति–परिवर्तनवादी दृष्टिकोण था। उन दिनों हमारे जाति समुदाय मे बच्चों की शिक्षा के प्रति माता–पिता जाग्रत नहीं थे। न लड़कों के प्रति, न लड़कियों के प्रति। बच्चों को पढ़ाकर का होयगो ? अपनी जात तो वही रहेगी। काम, रोजगार तो अपनी जात के ही करनो पड़ेगो, फिर क्यों बच्चों को परेशान करें ?

अपनी जाति समुदाय में सामान्य रूप से व्याप्त ऐसी भावना और वातावरण के बीच माँ ने दृढ़निश्चय के साथ पिता की सहमति से और असहमति के बाद भी हमें पढ़ाया। रूपयों के साथ हमारे लिए अपनी संपूर्ण भावना, इच्छाशक्ति और आशा, आकांक्षाओं को दाँव पर लगाया था। गाँव में लोग वर्णभेद, जातिभेद को पूर्ण कट्टरता से मानते थे। हमारी जाति का कार्यक्षेत्र और हर बात में सीमा रेखाएँ निश्चित थे, फिर भी माँ ने संघर्ष करते हुए प्रयत्नों के साथ हमें पढ़ाया।''[12]

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि किसी विशेष अवधि को सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों और सामाजिक संघर्ष को समझने में आत्मकथाओं से काफी मदद मिलती है।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

आत्मकथाएँ व्यक्ति और समाज के संघर्ष का प्रतिफल होती है। इस रूप में आत्मकथा उस समाज और समुदाय को समझने के लिए कच्चे माल उपलब्ध कराती है।

स्त्री रचनकारों द्वारा बड़ी संख्या में आत्मकथाएँ प्रकाश में आयी। उसके द्वारा स्त्री चेतना का विकास यात्रा को समझा जा सकता है। हमने देखा की कि किस प्रकार 'सीमंतनी उपदेश' में उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक की सजग और प्रखर होती स्त्री चेतना की झलक दिखाई पड़ती है। विधवाओं की दुर्दशा, स्त्रियों की गहनों के प्रति आशक्ति, स्त्रियों का संतान प्रेम, विवाह संस्थान में पुरूषों की जाद्ती आदि स्त्रियों की समस्याएँ और उनपर लेखिका की प्रतिक्रिया के माध्यम से उस दौड़ की स्त्री चेतना को समझा जा सकता है। आर्य समाज का सीमांत प्रदेशों में विशेषकर पंजाब में बहुत असर था। आर्य समाज की साधिकाएँ घर–घर में घुमकर उपदेश दिया करती थी। सीमंतनी उपदेश ऐसा किसी साधिका द्वारा रचित प्रतीत होती है। इसी प्रकार एक विधवा की जीवनी, हिंदी समाज में विधवाओं का चित्र खींचता है।

नब्बे के बाद जो स्त्री आत्मकथाएँ प्रकाश में आयी उनमें स्त्री चेतना का मुखर रूप दिखलाई पड़ता है। पर्दा प्रथा में रहने वाली स्त्रियों के लिए अवगुंठन सामाजिक अवस्थकता ही नहीं संस्कार ही बन गया। लम्बे समय तक स्त्रियाँ अपनी यातना और व्यथा को छुपाती रही। नब्बे के बाद स्त्रियों में आत्मविश्वास आया और अपना सच सामने रखने का साहस जुटा पाई। आत्मकथा लेखन का महत्व साहित्य से अधिक समाजशास्त्र से है। ये आत्मकथाएँ स्त्री नियति, स्त्री यातना और स्त्री स्मिता को समझने के लिए महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराती है।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची :–

1. दलित आत्मकथाएँ : दर्द के दस्तावेज, चंद्रभान सिंह यादव, हंस, पूर्णांक – 295, अंक : 9, संपादक – राजेन्द्र यादव, अप्रैल 2011, पृष्ठ – 37
2. शर्म की परतें खुलती है आत्मकथाओं में, रमणिका गुप्ता, हंस, पूर्णांक 228, वर्ष 20, अंक 2, संपा० – राजेन्द्र यादव, सितम्बर 2005, पृष्ठ – 50
3. हिन्दी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ० चम्पा श्रीवास्तव, वीणा प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पुरोवाक्
4. हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2006, पृष्ठ – 157
5. कस्तुरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ – फ्लैप
6. स्त्री–चेतना के प्रस्तान–बिंदु, सुनीता गुप्ता, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ 243–244
7. पिंजरे की मैना, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली – 2010, पृष्ठ – फ्लैप
8. नेपथ्य, नैया, अबलाओं का इन्साफ, स्फुरना, संपादन एवं प्रस्तुति – नैना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ – 12–13
9. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृ० – 27
10. आधुनिक हिन्दी कहानी नारी चेतना, मर्द आलोचना, मृदुला गर्ग, मासिक पत्रिका हंस, राजेन्द्र यादव, मई 1993, पृ० – 34
11. औरत : उत्तरकथा, राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ० 84–85, आत्मकथा नहीं : आत्मकथ्य, मृदुला गर्ग
12. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ० – 16

© RRIJM 2015, All Rights Reserved